उपदेश वल्लरीकार



श्रीसम्प्रदाय - सरोज - विभाकर, आचार्य - चूड़ामणि
श्रीखोजीद्वारपीठ संस्थापक जगद्‌गुरु सर्वतंत्र स्वतंत्र
स्वामी श्री श्रीखोजीजी महाराज
स्थितिकाल--विक्रमवी १५वीं शताब्दी

श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

मङ्गल-स्तुतिः

—:❀:—

सीतानाथसमारम्भां रामानन्दार्य मध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

सीता मे शरणं विदेहतनया सीतां भजे सप्रियां—
संरक्ष्योऽस्मि च सीतया जगति सीतायै नमः सर्वदा ।
सीताया ननु का परा श्रुतिषु सीतायाः प्रपन्नोऽस्म्यहं—
सीतायां रतिरस्तु मे शुभतरा सीते ! प्रसन्ना भव !!

श्रीसीताजी ही मेरा एकमात्र शरण हैं, श्रीविदेहराजकुमारी सीताजी का प्रियतम श्रीरघुनन्दनजी समेत मैं भजन करता हूँ। श्रीसीताजी के द्वारा मैं जगत में सुरक्षित हूँ, श्रीसीताजी के लिये ही सर्वदा नमस्कार करता हूँ। वेदों में श्रीसीताजी से बढ़कर भला और कौन श्रेष्ठ हैं ? श्रीसीताजी के चरणकमल का मैं प्रपन्न हूँ। श्रीसीताजी में मेरी परम पवित्र प्रीति हो, हे श्रीसीताजी ! आप मुझपर भली भाँति प्रसन्न हों।

जय श्रीजानकीवल्लभ प्यारे ।
यहि सुमिरन यहि ध्यान हमारे ॥

—:❀:—

श्रीमैथिलीप्राणेश्वराय नमः

श्रीजनकजा-प्रपत्तिसारस्तोत्रम्

न वाग्वपुर्बुद्धिभिरेव कस्यचित्-
कदापिहिंसास्तु शरीरिणो वृथा।
भवत्पदाम्भोरुहचिन्तनं विना
न चापयात्वम्बुजवीक्षणेक्षण: ॥१॥

हे कमलनयने! तन-मन-वचन से किसी भी प्राणी की व्यर्थ हिंसा कभी भी मैं न करूँ और आपके श्रीचरणारविन्दों का चिन्तवन मेरा मन क्षणमात्र भी न त्यागे, ऐसी कृपा मुझपर करें ॥१॥

हसन्तु निन्दन्तु वदन्तु, दुर्वचो
जना नियुक्ता हृदयस्थितेन वै।
केनापि देवेन यदाश्रितं सदा
न संस्थितिं स्वां प्रजहातु मे मन: ॥२॥

संसार के लोग भले हँसें—निन्दा करें तथा जैसा मनमें आवे बोलें, परन्तु मेरा मन हृदय-मन्दिर-विहारी देवाधिदेव सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजी के चरणों से अपनी संस्थिति को कदापि परित्याग न करे ॥२॥

निन्दा भयं मेऽस्तु तथा न जातुचिद्
यथेह निन्द्याचरणान्ममोरसि।

परोपकाराय सदास्तु मे मति-
र्नचापकाराय कदापि कस्यचित् ।।३।।

निन्दित पापाचरण करने का भय जैसा मेरे दिल में बना रहता है वैसा निन्दा का भय मुझको कभी भी न हो (अर्थात् मैं पाप करने से डरूँ, परन्तु व्यर्थ निन्दा के भय से न डरूँ) तथा मेरी बुद्धि भी परोपकार में सदा परायण रहे, परन्तु किसीका अपकार (बुरा) कभी न करे ।।३।।

मा क्रूर दृष्टिर्मम सत्सु भूया-
न्निरीक्ष्यमाणोस्य सकोपनेत्रैः ।
मा सेवतस्तानविपक्वबुद्धया
साधून्मदो मे हृदयं वृणोतु ।।४।।

यद्यपि मुझपर साधुजन हित की कामना से क्रोधित होकर देखें तो भी उन सज्जनों के प्रति मेरी कभी क्रूर दृष्टि न हो और सन्तों की सेवा करते समय कच्ची (अल्प) बुद्धि होने के कारण मेरे हृदय में अहंकार कभी आसन न जमाने पावे ऐसी कृपा करें ।।४।।

अपात्र पूजा न च पात्र हेलनं
तिरस्क्रिया नाप्यपराध्यतां सताम् ।
अदण्ड्य दण्डोऽस्तु न मे कृतघ्नता-
मयो क्रिया कापि विदेहनन्दिनी ।।५।।

हे श्रीविदेह राजकुमारीजी ! अपात्रकी पूजा करने का और सुपात्र का अनादर करने का अवसर कभी न मिले, अपराध करने पर भी सत्पुरुषों का तिरस्कार कभी न करूँ। निरपराध को मैं कभी दण्ड न दूँ और मुझमें कृतघ्नता कभी न आवे ।।५।।

योषित्सु सर्वासु च मातृबुद्धि-
स्तथास्तु मे स्वसृमतिः प्ररूढाः ।
बालेषु सर्वेषु च बन्धुबुद्धि-
र्मानीच बुद्धिः सतत ममास्तु ॥६॥

सभी स्त्रियों में मेरी मातृभावना रहे, बराबर उमरवाली ललनाओं मे सगी बहिन-की भावना रहे और बालकों में विशुद्ध बन्धु-भावना रहे, किसी के प्रति नीच विषय-वासना मुझे कभी भी न हो, ऐसी दया करें ॥६॥

विश्वासघातो न तथा कदर्यता
नाभक्ष्य पेयाशन पानमस्तु मे ।
न शास्त्र संवर्जित कर्मसु स्पृहा
कदापि भूयान्महिते महीयसाम् ॥७॥

हे महान् श्रेष्ठ सर्वशक्तिसम्पन्ना श्रीकिशोरीजी ! मैं कभी किसीके साथ विश्वासघात न करूँ, तथा कभी कायरता न दिखाऊँ, कभी भी अभक्ष्य (मछली-मांसादि शास्त्र-निषिद्ध एवं भगवत्प्रसाद के अतिरिक्त) भोजन न करूँ एवं निषिद्ध मदिरा-पान धूम्रपान-गाँजा-भांग, तमाखू आदि दुर्व्यसनों का शिकार न बनूँ । (यह उपदेश विशेषत: तपस्वी सन्तों को और जमातवालों को अवश्य ध्यान में लेना चाहिये) शास्त्र-वर्जित अकृत्य पाप-कर्मों को करने की कभी मेरे मनमें वासना न हो ऐसी दया करें ॥७॥

सहिष्णुता - क्षान्तिरमन्दशेमुषी
वात्सल्यताऽव्याज कृपा-विनम्रता ।

उदारता - ह्री - मृदुता- सुशीलता-
न जातु चैता हृदयं त्यजन्तु मे ।।८।।

सहनशीलता, क्षमा, विशुद्ध-वात्सल्यता, निर्हैतुकी दया, विनम्रता, उदारता, लज्जा, मृदुता, सुशीलता आदि सात्विक सम्पत्तियाँ मेरा हृदय कभी परित्याग न करें, ऐसी दया करें ।।८।।

मदाश्रिताः क्लेशयुता न सन्तु वै
विशेषतो भागवता उपेक्षया ।
नाऽभ्यागताः क्रूर गिरा दृशार्दिताः
समुच्छ्वसन्तु स्मयदूषितात्मनः ।।९।।

मेरे आश्रितजन—विशेषकर—भागवत सन्त—मेरी उपेक्षा से कभी क्लेश प्राप्त न करें और अहंकार से दूषित हृदयवाले मुझ पामर की क्रूर वाणी और दृष्टि से पीड़ित होकर अभ्यागत सन्त कभी दुःख के निःश्वास न लें, यही प्रार्थना है ।।९।।*

ऋते त्वदुच्छिष्टमथान्यवस्तुषु
स्याद्भोग बुद्धिर्न कदापि मामकी ।
त्वदर्थमेवाऽखिल चेष्टितं हि मे
भक्ताऽपराधो न कदापि मां स्पृशेत् ।।१०।।

आपकी उच्छिष्ट प्रसादी के सिवा अन्य किसी वस्तु में मेरी भोग-बुद्धि कभी न हो। मेरी सभी क्रियायें स्वाभाविक रूप से आपकी सेवा के लिये ही हों और आपके प्यारे भक्तों का अपराध कभी मुझे न छू जाय ऐसी दया करें ।।१०।।

---

*यह स्थानधारी सन्त-महन्तों को सततकाल स्मरणीय श्लोक है।

रतिः प्रवृत्तौ विरतिर्निवृत्तौ
सङ्गोऽसतां नास्तु सतामसङ्गः ।
सर्वेषु सर्वास्वनुराग दृष्टि-
र्मादोष दृष्टिर्मम कर्हिचित्स्यात् ।।११।।

सांसारिक व्यवहारों से प्रेम-निवृत्ति मार्ग (अनन्य शरणागति जो एकान्त सुख देती है) उससे उदासीनता, अनार्यों का सङ्ग और संतों के संग का अभाव कभी भी न हो । सभी पुरुष और सभी स्त्रियों के प्रति भगवत्संबंध से सहज अनुराग हो, दोष-दृष्टि कभी किसी पर न हो ऐसी दया कर ।।११।।

स्वभृत्य संपोषण सक्त चेतसा
नोपेक्षिताः सन्तु, मया—त्वदाश्रिताः ।
लोभाद्भयाद्वा निजधर्मवर्जिता
क्रियास्तु नो कापि तवानुकम्पया ।। १२ ।।

अपने नौकर-चाकर और कुटुम्ब-परिवार के पोषण में आसक्त चित्त होकर मेरा आपके चरणाश्रित प्रेमी भक्तों के प्रति कभी उपेक्षा भाव न हो और लोभ, भय अथवा अन्य किसी भी व्याव-हारिक कार्य की सफलता के लिये आपकी अनुकम्पा से कोई भगवद्धर्म के प्रतिकूल कार्य कभी न हो जायँ यही प्रार्थना है ।।१२।।*

स्वप्नोपमं मानुषमेत्य जन्म
स्वर्वासिमृग्यं क्षणभङ्गुरञ्च ।

* (यह गृहस्थ, वैष्णव, भक्त और मठधारियों को बार-बार मनन करना चाहिये)

वैरं न कुर्यां तव तुष्टिकामः
केनाप्यहं श्रीनिमिवंशभूषे ॥ १३ ॥

देवता भी जिसको प्राप्त करने के लिये तरसते हैं ऐसा दुर्लभ मानव देह, जो स्वप्न के समान क्षणभंगुर हैं-प्राप्त कर हे निमिवंश-भूषणे श्रीमैथिलीजू! मैं आपको प्रसन्न करने की इच्छा से किसी के साथ कभी वैर न करूँ (कारण कि अपने पुत्रों का आपस का वैर माँ को कभी अच्छा नहीं लग सकता) ॥१३॥

न्यायालयं ते क्षमताप्रधानं
न्यायप्रधानं न वदन्ति सन्तः।
क्षान्तिप्रधाना मतिरस्तु तस्मा-
न्न्यायप्रधाना न मम क्षमाब्धे ॥१४॥

आपका न्यायालय क्षमाप्रधान है, न्यायप्रधान नहीं है ऐसा सन्तजन कहते हैं (अर्थात् आप अपनी दयालुता से दण्ड-नीय अपराधियों को भी-दण्ड न देकर क्षमा प्रदान ही कर देती हैं) इसलिये मेरी बुद्धि भी हे क्षमानिधे! आपकी अहैतुकी कृपा से क्षमा-प्रधाना ही बनी रहे, न्यायप्रधाना बनकर किसी के लिये दण्ड का विधान न करे यही कामना है ॥१४॥

भयं न मे स्याच्चरतः स्वधर्मं
कालादपि प्राप्त विवेक दृष्टेः।
मत्तस्तथा तन्न पिपीलिकानां
सौभाग्यमेतत्कृपया प्रयच्छ ॥१५॥

अपने भगवद्धर्म को पालन करते हुए मुझे ऐसी विवेक दृष्टि प्राप्त हो कि कभी भयङ्कर काल का भी भय मालूम न हो। उसी

प्रकार मेरे द्वारा तुच्छ चींटी आदि जीवों को भी कभी कोई भय प्राप्त न हो, कृपा करके ऐसा सौभाग्य प्रदान कीजिये ॥१५॥

स्व शिक्षयै वा दृढयन्स्वधर्मं
समाश्रितान्भागवतेप्रधाने ।
अनेक सांसारिक भोग सक्तं,
न काङ्क्षतं जन्मचिराय लोके ॥१६॥

अपनी शिक्षा के लिये अथवा श्रुति सिद्धान्त शिरोरत्न श्रीभागवत धर्म की दृढ़ता के लिये अथवा अपने आश्रितों को स्वधर्म प्रधान में एकनिष्ठ करने के लिये भले ही संसार में जन्म बहुत समय तक लेना पड़े परन्तु सांसारिक भोगासक्ति के लिये मेरा जन्म न हो यही एक इच्छा है ॥१६॥

त्वद्धाम वासस्तव कीर्त्तिगानं
त्वन्नाम सङ्कीर्त्तनमेवनित्यम् ।
अम्बा शुभोत्सङ्ग विहारशीले
त्वद्रूपसञ्चिंतनमस्तु मह्यम् ॥१७॥

आपके श्रीधाम का वास, आपकी निर्मल कीर्त्तिका गान, आपके सुमधुर नाम का सङ्कीर्तन और श्रीसुनैना माता की गोदी में खेल करनेवाले आपके पवित्र स्वरूप का चिन्तवन मुझे सर्वदा प्राप्त हो ऐसी कृपा कीजिये ॥१७॥

अन्यान्य देवार्च्चन वन्दन स्मृति-
स्तव प्रपत्तिः श्रवणानुरागिता ।
स्वप्नेऽपि भूयादिह भक्ति कण्टिका
नानन्यता पाठ परायणस्य मे ॥१८॥

अन्यान्य (इष्ट-रहित अन्य तुच्छ) देवों का पूजन, वन्दन, स्मरण, प्रार्थना, प्रपत्ति, चरित्र-पाठ, श्रवण आदि भक्ति कण्टक बातें आपकी ही अनन्यता के पठन में परायण मुझ पामर से कभी स्वप्न में भी न हों ॥१८॥

पूज्यानुवन्द्या परिभावनीया
ज्ञेयानुज्ञेया समुपासनीया ।
श्रेयः परं काङ्क्षभिरातमनिष्ठै-
स्त्वमेव हित्वाखिल कर्म जालम् ॥ १९॥

परम पूज्य, वन्दनीय, हृदय की श्रद्धा से भावनीय-शास्त्र श्रुति और सन्तों के उपदेशों द्वारा जानने लायक-परम कीर्तनीया तथा भली-भाँति उपासना करने योग्य आपका आश्रय छोड़कर आत्म-कल्याण करने की इच्छावाले भावुक भक्तों के लिये और सब कुछ कर्मजाल-मात्र ही है ॥१९॥

स मे पिता सा जननी स बन्धुः
सखा स दाता स पतिर्गुरुः सः ।
कृपालुतोपेक्षित सर्वदोषः
सेवा सहायो य इहास्त्वनीहः ॥२०॥

वही मेरा पिता, माता बन्धु, सखा, दाता, पति और सद्गुरु है जो अपनी कृपा से मेरे सभी दोषों की उपेक्षा कर निष्काम भाव से आपकी सेवा में यहाँ सर्वविध सहायता प्रदान करें ॥२०॥

परम लालनैः पाल्यते त्वया
निरय कर्म कृन्मादृशो जनः ।

करुणया यया हेतु हीनया
कुरु न मां तया सेवयोज्झितम् ॥२१॥

मेरे समान नरकगामी खोटे कर्म करनेवाले पतित का भी जिस परम प्यार से आप पालन करती हैं, उसी निर्हेतुकी परम दयालुता से मुझे अपनी सेवा से हीन प्रमदरिद्र कभी न बनावे ॥२१॥

विनय एव मेऽयं हि साञ्जलिः
सुनयनाङ्कभूषे प्रसीदताम् ।
अनुदिनं तवोच्छिष्ट जीवतो
वनरुहाक्षि नो चेत्तु का गतिः ॥२२॥

अब मेरी हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक यही प्रार्थना है कि हे श्रीसुनैनानन्दिनी जू ! आप मुझ दीन पर कृपा करके प्रसन्न हों, क्योंकि आपका उच्छिष्ट भोजन कर जीवन-निर्वाह करनेवाले मुझ गरीब को हे कमलनयने ! दूसरी गति ही और क्या है ॥२२॥

इति श्रीसम्प्रदायसरोज-विभाकर आचार्य चूड़ामणि
श्रीखोजी द्वारपीठ संस्थापक श्रीराघवेन्द्रदासाचार्य
चरणनामधेय सर्वतन्त्र स्वतन्त्र जगद्गुरु
१००८ श्रीस्वामि श्रीखोजीजी महाराज
विरचितम् श्रीजनकजा प्रपत्ति
सार स्तोत्रम्

—❀०❀—